Shodhaamrit, Vol.-2; Issue-2 (July-Dec.) 2025 : Page No.-175-178

शोधामृत

(कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की अर्धवार्षिक, सहकर्मी समीक्षित, मूल्यांकित शोध पत्रिका)

ISSN : 3048-9296 (Online)
3049-2890 (Print)
IIFS Impact Factor-2.0
Vol.-2; issue-2 (July-Dec.) 2025
Page No- 175-178

©2025 Shodhaamrit
https://shodhaamrit.gyanvividha.com

डॉ. मुन्ना साह
सहायक प्राचार्य, हिन्दी-विभाग
मिल्लत महाविद्यालय, दरभंगा.

Corresponding Author :
डॉ. मुन्ना साह
सहायक प्राचार्य, हिन्दी-विभाग
मिल्लत महाविद्यालय, दरभंगा.

दिनकर के साहित्य में अस्मितामूलक विमर्श

रामधारी सिंह दिनकर विश्व प्रेम और विश्व मंगल की कामना के अन्तर्गत राष्ट्रीयता को पैनी नजर से देखते हैं। वस्तुतः उनके आविर्भाव के समय देश पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था और भारतवासी स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहे थे। 'हिमालय' उनकी देशभक्ति की भावना की बेजोड़ कविता है। 1950 में जब 'रश्मिरथी' लिखना प्रारंभ किए उस समय दलितों और उपेक्षितों के उद्धार की बयार बहने लगी थी। 'महाभारत' का एक उपेक्षित पात्र कर्ण जो उदार-हृदय, दया-धर्म, दान-पुण्य करने वाला श्रेष्ठ ज्ञानी मनुष्य था। इस प्रकार के ज्ञानी मनुष्य को ही दिनकर पूजनीय मानते हैं-

"ऊँच-नीच का भेद न माने, वही श्रेष्ठ ज्ञानी है,
दया-धर्म जिसमें हो, सबसे वही पूज्य प्राणी है।"[1]

कर्ण का चेहरा ऐसा देदीप्यमान मानो सूर्य से रश्मियां निकल रही हों। कर्ण को सूर्यपुत्र कहे जाने तथा 'रश्मिरथी' नामकरण के पीछे यही कारण हो सकता है। अधीरथ नामक सारथी और राधा के पुत्र होने के कारण उसे राधेय तथा नीच समझा जाता था। वीर धनुर्धर तथा अन्य गुणों से युक्त होने पर भी कर्ण को आदर नहीं दिया जाता था। कौरव और पाण्डवों की शिक्षा पूरी होने के बाद गुरु द्रोणाचार्य ने रंगभूमि में सबकी परीक्षा लेने की व्यवस्था की। अर्जुन अपनी धनुष-विद्या का प्रदर्शन कर प्रशंसा प्राप्त कर रहा था, तभी भीड़ से निकल कर कर्ण ने उसे अपने साथ द्वंद्व युद्ध के लिये ललकारा और अर्जुन से भी बढ़कर धनुष-विद्या का प्रदर्शन किया। वहां किसी को भी कर्ण की जाति का पता नहीं था, अतः कृपाचार्य ने यह कह कर कर्ण को अर्जुन के साथ द्वंद्व-युद्ध करने की आज्ञा नहीं दी कि एक राजा या क्षत्रिय राजकुमार किसी अज्ञात और अपने से हीन जाति के व्यक्ति तथा राज्यहीन व्यक्ति की चुनौति स्वीकार नहीं कर सकता, तुम्हारा नाम-धाम और जाति क्या है? यह बात सुनकर कर्ण बहुत दुखी हुआ। दिनकर लिखते हैं-

"जाति! हाय री जाति!' कर्ण का हृदय क्षोभ से डोला,
कुपित सूर्य की ओर देख वह वीर क्रोध से बोला-
जाति-जाति रटते, जिनकी पूँजी केवल पाखण्ड,
मैं क्या जानूँ जाति? जाति हैं ये मेरे भुजदण्ड।"[2]

अपने को उच्च कुल और सभ्य मानने वाले तथा दूसरे की जाति पूछने वाले की निर्लज्जता और पाखण्ड को ताड़ते हुए दिनकर ने उनकी वास्तविकता को इन पंक्तियों में उद्धृत किया है-

"ऊपर सिर पर कनक-छत्र, भीतर काले-के-काले,
शरमाते हैं नहीं जगत में जाति पूछनेवाले।"[3]

श्रेष्ठ जाति के अहंकार और छल-छद्म का चित्रण दिनकर ने चेतना के साथ किया है-

"मस्तक ऊँचा किये, जाति का नाम लिये चलते हो,
पर अधर्ममय शोषण के बल से सुख में पलते हो।
अधम जातियों से थर-थर काँपते तुम्हारे प्राण,
छल से मांग लिया करते हो अंगूठे का दान।"[4]

सवर्ण समाज की संकीर्ण मानसिकता ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'जूठन' तथा अन्य दलित आत्मकथाओं में भी दिखाई देती है, वहां जाति का घमण्ड प्रेम की प्रखरता और हृदय की कोमलता से भी नहीं टूटता है। जाति की श्रेष्ठता बघारने वाले को दिनकर ने अपने कुल, जाति और वंश परंपरा की तरफ न देखकर निजी गुणों को देखने के लिए बाध्य किया है। कर्ण जाति की बात पर कहता है-

"पूछो मेरी जाति, शक्ति हो तो, मेरे भुजबल से,
रवि-समाज दीपित ललाट से,
और कवच-कुण्डल से।
पढ़ो उसे जो झलक रहा है मुझमें तेज-प्रकाश,
मेरे रोम-रोम में अंकित है मेरा इतिहास।
अर्जुन बड़ा वीर क्षत्रिय है तो आगे वह आवे,
क्षत्रियत्व का तेज जरा मुझको भी तो दिखलावे।
अभी छीन इस राजपुत्र के कर से तीर-कमान,
अपनी महाजाति की दूंगा मैं तुमको पहचान।"[5]

जातिवाद और क्षत्रियत्व की बात को पाखण्ड बता कर जब कर्ण ने अर्जुन को सामने आने पर उसका धनुष-बाण तक छीन लेने की बात कही तो अर्जुन का बचाव और कर्ण की उपेक्षा करते हुए कृपाचार्य ने कहा कि 'हे अनजाने युवक! तुम व्यर्थ ही गुस्से में बके जा रहे हो। बात बहुत साधारण-सी है कि तुम पहले अपनी वीरता से कोई राज्य की स्थापना करो तभी राजपुत्र से युद्ध कर पाने के अधिकारी स्वीकार किए जाओगे। कर्ण मन-ही-मन भ्रम में पड़ सोचने लगा कि वह राज्य भला कहाँ से अर्जित करे? पर कर्ण के साथ घटित हो रहे इस अन्याय को सुयोधन सहन न कर पाया और आगे बढ़ कर बोला- ऐसे वीर व्यक्तित्व का, जो अपनी तेजस्विता से सबके सामने सूर्य के समान जगमगा रहा है, अपमान करना तो बड़ा पाप है। कर्ण के गुणों और वीरता का महत्व स्वीकारने की बात करते हुए सुयोधन कहता है-

"मूल जानना बड़ा कठिन है नदियों का, वीरों का,
धनुष छोड़कर और गोत्र क्या होता रणधीरों का?
पाते हैं सम्मान तपोबल से भूतल पर शूर,
'जाति-जाति' का शोर मचाते केवल कायर, क्रूर।"[6]

दिनकर द्वारा जाति का अभिमान रखने वाले को कायर और क्रूर जैसे विशेषणों से अलंकृत करना आज भी प्रासंगिक है। मनु महाराज की वर्ण-व्यवस्था के अंतर्गत एक मनुष्य को श्रेष्ठ और दूसरे को नीच श्रेणी में बांट कर उसे ज्ञान-विज्ञान से वंचित कर देना और खुद को पूजनीय घोषित करना मानवता के लिए अभिशाप है। मानवता से बढ़कर ना तो कोई जाति है और ना धर्म। सुयोधन फिर कहता है-

"कर्ण भले ही सूतपुत्र हो अथवा श्वपच, चमार,
मलिन, मगर, इसके आगे हैं सारे राजकुमार।"[7]

ये पंक्तियां उस उद्भट मनुष्य के लिए भी सार्थकता प्रकट करती हैं, जिसने भारतीय संविधान निर्माण तथा अछूतोद्धार के लिए अद्वितीय कार्य किया है। बुद्धि-विवेक वीरता और तेजस्विता से परिपूर्ण कर्ण का किसी भी तरह का अपमान करना उचित नहीं है। कर्ण की वीरता पर मुग्ध और अपमान पर क्षुब्ध होकर, उसे अंग देश का राजा घोषित करते हुए सुयोधन ने कहा- 'मैं आज अंग देश का राजमुकुट कर्ण के मस्तक पर पहनाता हूँ।' सुयोधन ने अपने सिर से मुकुट उतार कर कर्ण के सिर पर पहना दिया। सभी आम जन और कौरव सुयोधन की प्रशंसा करने लगे। कर्ण चकित-विस्मित होकर रह गया। भरी सभा में अपमान और उपेक्षा के वक्त सुयोधन ने जो कार्य किया था वह निर्विवाद रूप से प्रशंसनीय था। सभी कर्ण को सम्मान की दृष्टि से देखने लगे। किसी वीर और महान व्यक्ति से ईर्ष्या, द्वेष करने वाले, झूठे और अहंकारी लोग चाहे कुछ भी क्यों न कहते रहें, किंतु जनता बुद्धिजीवियों और वीरों को एक-न-एक दिन पहचान कर उचित मान-सम्मान दिया ही करती है।

दिनकर ने समाज की पारंपरिक संरचना की तरफ इशारा करते हुए जातीयता की वास्तविक पहलू को स्पष्ट किया है-

"क्या विचित्र रचना समाज की,
गिरा ज्ञान ब्राह्मण-घर में,

मोती बरसा वैश्य-वेश्म में,
पड़ा खड्ग क्षत्रिय-कर में।"[8]

धर्मशास्त्रों में ब्राह्मणो का स्थान इतना अप्रतिम और अमोघ माना गया है कि उसे देखकर आश्चर्य होता है। शास्त्रकार सब-के-सब ब्राह्मण ही होते थे, अतएव, अपने स्थान को अमोघ बनाने की इच्छा उनमें प्रबल रही हो तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। धर्मशास्त्रों में, बार-बार, समाज को सावधान किया गया है कि वह ब्राह्मण को रुष्ट होने का अवसर नहीं दे।

"क्रुद्धो ब्राह्मणो हन्ति राष्ट्रम्। अर्थात् कुपित ब्राह्मण सम्पूर्ण राष्ट्र का विनाश कर देता है।**"[9]** इस लोकाचार का खण्डन युधिष्ठिर-सर्प-संवाद में किया गया है। वहां सर्प ने युधिष्ठिर से पूछा है कि 'ब्राह्मण कौन है? इस पर युधिष्ठिर कहते हैं कि ब्राह्मण वह है, जिसमें सत्य, दान, क्षमा, सुशीलता, क्रूरता का अभाव तथा तपस्या और दया, इन सद्गुणों का निवास हो। इस पर सर्प शंका करता है कि ये गुण तो शूद्र में भी हो सकते हैं, तब ब्राह्मण और शूद्र में अंतर क्या है?

शूद्रेष्वपि च सत्यं च दानमक्रोध एव च
आनृशंस्यमहिंसा च घृणा चैव युधिष्ठिर।

अर्थात् हे युधिष्ठिर, सत्य, दान, अक्रोध, क्रूरता का अभाव, दया तथा अहिंसा आदि गुण तो शूद्रों में भी हो सकते हैं। इस पर युधिष्ठिर ने जो उत्तर दिया है, वह किसी भी अभिनव मनुष्य का उत्तर हो सकता है। युधिष्ठिर ने कहा, -

शूद्रे तु यद् भवेल्लक्ष्म द्विजे तच्च न विद्यते,
न वै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणों न च ब्राह्मणः।
यत्रैतल्लक्ष्यते सर्प वृत्तं स ब्राह्मणः स्मृतः
यत्रैतत्र भवेत् सर्प तं शूद्रमिति निर्दिशेत।

अर्थात् यदि शूद्र में सत्य आदि उपयुक्त लक्षण हैं और ब्राह्मण में नहीं हैं, तो वह शूद्र शूद्र नहीं है, न वह ब्राह्मण ब्राह्मण है। हे सर्प, जिसमें ये सत्य आदि लक्षण मौजूद हों, वह ब्राह्मण माना गया है और जिसमें इन लक्षणों का अभाव हो, उसे शूद्र कहना चाहिए। सर्प निष्कर्ष रूप में कहता है कि यदि आचार से ही ब्राह्मण की परीक्षा की जाए, तब तो जब तक उसके अनुसार कर्म न हों, जाति व्यर्थ ही है।'[10]

'रश्मिरथी' द्वितीय सर्ग में वर्णित पंक्तियां-

"हाय, कर्ण, तू क्यों जन्मा था? जन्मा तो क्यों वीर हुआ?
कवच और कुण्डल-भूषित भी तेरा अधम शरीर हुआ।
धस जाये वह देश अतल में, गुण की जहां नहीं पहचान,
जाति-गोत्र के बल से ही आदर पाते हैं जहां सुजान।
नहीं पूछता है कोई, तुम व्रती, वीर या दानी हो?
सभी पूछते मात्र यही, तुम किस कुल के अभिमानी हो?
मगर, मनुज क्या करे? जन्म लेना तो उसके हाथ नहीं,
चुनना जाति और कुल अपने बस की तो है बात नहीं।"[11]

जाति और गोत्र के आधार पर जिस देश में बुद्धिजीवियों तथा वीरों का आदर किया जाता है गुण के आधार पर नहीं, उस देश को अतल में धंसने की बात कह कर कवि ने अपनी मार्मिक पीड़ा को अभिव्यक्त किया है। कुल का अभिमान भारतीय मानसिकता में इस तरह बैठ गया है कि एक आनुवंशिक बीमारी की तरह खत्म होने का नाम नहीं ले रहा। किसी भी कुल में जन्म लेने का निर्णय तो मनुष्य के हाथ नहीं है। स्पष्ट है-

"कौन जन्म लेता किस कुल में?
आकस्मिक ही है यह बात,
छोटे कुल पर, किन्तु, यहां होते तब भी कितने आघात!
हाय, जाति छोटी है, तो फिर सभी हमारे गुण छोटे,
जाति बड़ी, तो बड़े बनें वे, रहें लाख चाहे खोटे।"[12]

छोटे कुल पर आघात की परंपरा सदियों से चली आ रही है। छोटी जाति के अन्तर्गत सारे गुण और कर्म को छोटा ही समझा जाता है तथा बड़े कुल और जाति के लाख निकृष्ट कर्म करने वाले भी बहुरूपिया वेष में सम्मान पाते रहे हैं। जातिवाद का यह आधार कितना तुच्छ और अमानवीय है। जातिवाद एक शाप की तरह कभी भी अच्छे मनुष्यों को आगे नहीं बढ़ने देता। निहित स्वार्थियों ने ही दूसरे दुर्बल मनुष्यों को दबाये रखने के लिए जातिवाद को बढ़ावा दिया है।

'परशुराम कर्ण की जांघ पर सिर रखकर सो रहे थे। एक जहरीले कीड़े के काट लेने पर भी कर्ण हिला-डुला नहीं, ताकि गुरु की नींद न खराब हो। परंतु गर्म खून की धरा ने परशुराम के तन का स्पर्श किया, वे जाग गये। कर्ण की स्थिति को देखकर परशुराम के मन में उसकी जाति पर संदेह पैदा हो गया और उसने क्रोध में आकर कर्ण को शाप दे दिया।'[13]

ज्ञान की प्रबल इच्छा के कारण ही कर्ण ने अपनी छोटी जाति बता न सका था। पश्चाताप से भरा कर्ण ने कहा कि -

"सूत-पुत्र मैं शूद्र कर्ण हूँ, करुणा का अभिलाषी हूँ,
जो भी हूँ, पर, देव आपका अनुचर अंतेवासी हूँ।
छली नहीं मैं हाय, किन्तु, छल का ही तो यह काम हुआ,
आया था विद्या-संचय को, व्यर्थ में बदनाम हुआ।"[14]

रामायण से लेकर महाभारत काल तक परशुराम का क्रोध किसी-न-किसी प्रसंग में ब्राह्मणत्व का प्रतीक बनकर प्रकट होता है। रामचरितमानस के बालकाण्ड में परशुराम स्वयं कहते हैं कि, 'मैं बाल ब्रह्मचारी और अत्यंत क्रोधी हूँ, क्षत्रियकुल का शत्रु तो विश्व भर में विख्यात हूँ।'[15] लेकिन सर्प और युधिष्ठिर संवाद को यदि स्मरण करें तो क्रोध और क्रूरता तो ब्राह्मण के लक्षण ही नहीं हैं, फिर परशुराम का क्रोधी होना क्या तर्कसंगत है?

कौरव और पाण्डवों के बीच युद्ध के कारण सम्भावित दुख-शोक को रोकने में सहायक बनने के लिए कृष्ण ने कर्ण से कहा- मित्र कर्ण! तुम कौरवों का साथ छोड़कर इस युद्ध को रोकने में मेरी सहायता करो तुम्हारे अभाव में सुयोधन युद्ध नहीं लड़ सकेगा। कृष्ण द्वारा कुंती का पुत्र होने की बात सुनकर कर्ण ने आहत भाव से कहा -

''मैं जाति-गोत्र से हीन, दीन,
राजाओं के सम्मुख मलीन,
जब रोज अनादर पाता था,
कह 'शूद्र' पुकारा जाता था।
पत्थर की छाती फटी नहीं,
कुंती तब भी तो कटी नहीं।''[16]

कुल और जाति का दर्प-दमन कर परिश्रम और बल को ही जीवन का साधन बताते हुए कर्ण ने कृष्ण से कहा -

''कुल-गोत्र नहीं साधन मेरा,
पुरुषार्थ एक बस धन मेरा,
कुल ने तो मुझको फेंक दिया,
मैने हिम्मत से काम लिया।
अब वंश चकित भरमाया है,
खुद मुझे खोजने आया है।''[17]

पाखंडी और बनावटी लोग ही वंश-जाति के नाम पर आदर पाने का यत्न करते हैं। परंतु तेजस्वी, विवेकशील और बलवान लोग अपने सिर पर पूर्वजों का छत्र धारण करके नहीं चलते अपना पुरुषार्थ ही उनका सब कुछ होता है। महलों की चोटियों या गुम्बजों में कबूतर ही घोंसले बनाकर रहा करते हैं। तेजवान और बलवान पक्षिराज गरुड़ वहां कभी नहीं रह सकता। वह सोने-चांदी के सुखों में नहीं पला करता, बल्कि वह तो पहाड़ों की फटी हुई दरारों में निवास करता है। उसी प्रकार सच्चे वीर और विवेकशील राजमहलों या उंची जातियों में ही नहीं पाये जाते वे कहीं भी जन्म लेकर यश प्राप्त कर सकते हैं।

''युग-युग जीयें कर्ण, दलितों के वे दुख-दैन्य-हरण हैं,
कल्पवृक्ष धरती के, अशरण की अप्रतिम शरण हैं।''[18]

दिनकर की अस्मितामूलक चेतना, दलित संवेदना की कसौटी पर खरी उतरती है। अतएव दलित की पीड़ा का चित्रण जितना स्वभाविक तथा मार्मिक ढंग से एक दलित कर सकता है उतना कोई दूसरा नहीं कर सकता क्योंकि 'हमदर्दी में दया छूपी होती है और भोग में वास्तविकता।' इसके बावजूद दिनकर ने कर्ण की पीड़ा के माध्यम से जो अपनी संवेदना प्रकट की है, वह समकालीन अस्मितामूलक विमर्श के लिए प्रासंगिक है।

संदर्भ :

1. रश्मिरथी, रामधारी सिंह दिनकर, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-1, पांचवा पेपरबैक संस्करणः 2012, पृ. 17.
2. वही, पृ. 19.
3. वही, पृ. 19.
4. वही, पृ. 20.
5. वही, पृ. 20.
6. वही, पृ. 20.
7. वही, पृ. 23.
8. वही, पृ. 28.
9. संस्कृति के चार अध्याय, रामधारी सिंह दिनकर, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-1, तीसरा संस्करणः2010, पृ. 63.
10. वही, पृ. 64.
11. रश्मिरथी, रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 31.
12. वही, पृ. 31.
13. वही, पृ. 32-33.
14. वही, पृ. 33.
15. बाल ब्रह्मचारी अति कोही। बिस्व बिदित छत्रियकुल द्रोही।। रामचरितमानस, तुलसीदास (टीकाकार- हनुमानप्रसाद पोद्दार), गीताप्रेस गोरखपुर, संस्करणः 2068, दो सौ सैंतालीसवां पुनर्मुद्रण, पृ. 245.
16. रश्मिरथी, रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 49.
17. वही, पृ. 55.
18. वही, पृ. 64.

•